Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

राष्ट्री संगमनी वसूनाम् में प्रयुक्त राष्ट्रभावना

Dr Hetal M Pandya

Department Of Sanskrit

Usl, Gujarat University Ahemdabad 380009

EMAIL: hmp_san@yahoo.co.in

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

वेदो की अनुपम ज्ञानसंपदा के कारण ही भारत अतीत में विश्वगुरु होने का गौरव प्राप्त करने में समर्थ हुआ था।

राष्ट्र से संबंधित शब्दों का प्रयोग वेद में अत्यधिक किया गया है | जैसे साम्राज्य, स्वराज्य, राज्य, महाराज्य आदि | इन सब में राष्ट्र शब्द ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं | राष्ट्र शब्द से आशय उस भूखंड विशेष से हैं जहां के निवासी एक संस्कृति विशेष में आबद्ध होते हैं | एक सुसमृद्ध राष्ट्र के लिए उस का स्वरुप निशित होना आवश्यक है | कोई भी देश एक राष्ट्र तभी हो सकता है जब उसमें देशेतरवासियों को भी आत्मसात करने की शक्ति हो | उनकी अपनी जनसंख्या, भू-भाग, प्रभुसत्ता, सभ्यता, संस्कृति, भाषा, साहित्य, स्वाधीनता और स्वतंत्रता तथा राष्ट्रीय एकता आदि समस्त तत्त्व हों, जिसकी समस्त प्रजा अपने राष्ट्र के प्रति आस्थावान हो | वह चाहे किसी भी धर्म, जाति तथा प्रांत का हो | प्रांतीयता और धर्म संकुचित होते हुए भी राष्ट्र की उन्नति में बाधक नहीं होते हैं क्योंकि राष्ट्रीयभावना राष्ट्र का महत्वपूर्ण आधारतत्व है, जो नागरिकों में प्रेम, सहयोग, धर्म, निष्ठा कर्तव्यपरायणता, सहिष्णुता तथा बंधुत्व आदि गुणों का विकास करता है| तथा धर्म तथा प्रांतीयता गौण हो जाती है | तब राष्ट्र ही सर्वोपरि होता हैं | इन गुणों के विकास से ही राष्ट्र स्वस्थ तथा शक्तिशाली होता है |

राष्ट्र के संगठन हेतु किन्ही निश्चित तत्त्वों की आवश्यकता नहीं| समान जाति, धर्म, भाषा, संस्कृति, भूभाग की अपेक्षा उनमें साथ साथ रहने की इच्छा तथा एकता की भावना होना अति आवश्यक है | अतः राष्ट एक कल्पना है जिस कल्पना का आधार होता है -मानवीय एकता | राष्ट्र वह भावना हैं जो एकत्व की ओर प्रेरित करती है | राष्ट्रीय के लिए जनसंख्या, भूभाग,, सरकार, प्रभुसत्ता आवश्यक नहीं, इसके लिए आवश्यक है भाव |

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

जनसंख्या राष्ट्र का मुख्य तत्त्व है | जब तक राष्ट्र में प्रयाप्त जनसंख्या नहीं होगी तब तक राष्ट्र को संगठित नहीं किया जासकता क्योंकि राष्ट्र का प्राणतत्त्व है – राष्ट्रीय भावना, जो कि लोगों के परस्पर मिलकर एक साथ रहने से तथा विचारों के आदान-प्रदान, प्रेम, सहयोग की भावना, सभ्यता और संस्कृति आदि के द्वारा पल्लवित तथा पुष्पित होती है| यह तभी संभव है जब जनसंख्या का उद्देश्य राष्ट्रीय एकता, शांतिमय जीवन तथा जियो और जीने दो की भावना से ओत-प्रोत हो।

राष्ट्र की आध्यात्मिकता की भावना को दृडता प्रदान करने में भौगोलिकता का अपना विशेष महत्व है क्योंकि भौगोलिकता हि मनुष्य को एकत्व की शिक्षा प्रदान करती है | एक भूभाग पर बसा हुआ जनसमूह स्वाभाविक रुप से राष्ट्रीय एकता की दृढ- बंधन में बंध जाता है क्योंकि उसकी समान जाती, भाषा, धर्म , परंपरा, सभ्यता, संस्कृति, साहित्य आचार-विचार तथा भाव आदि सामान होने के कारण उन से प्रेरित होकर ही वह दूसरों के दुख में अपना दुख तथा दूसरों के सुख में अपना सुख समझता है |प्रत्येक राष्ट्र के संगठन हेतु भाषा का होना अति आवश्यक है क्योंकि भाषा रहित राष्ट्र गूंगे व्यक्ति के समान होता है जिसकी अपनी कोई भाषा, शैली, भाव तथा विचार नहीं होते | अतः राष्ट्र को सुसंगठित करने हेतु राष्ट्र की एक राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिए जो संपूर्ण राष्ट्र में बोली जाए तथा जिसके माध्यम से ही राष्ट्रीय स्तर पर समस्त कार्य की जाएं तथा राष्ट्र अपनी शासन व्यवस्था को सुचारु रुप से संचालित कर सके| भाषा ही ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम अपने भावों, विचारों तथा अनुभवों को व्यक्त कर सकते हैं तथा दूसरों के भाव विचारों तथा अनुभवों को समझ सकते हैं | भाषा के माध्यम से ही मानव जाति ने न केवल समाज के रूप में अपितु राष्ट्र रूप में गुम्फित कर लिया है | इस प्रकार राष्ट्र, संगठन तथा राष्ट्रीयता को दृढ़ता प्रदान करने में भाषा अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है |

मनुष्य स्वेच्छा से जो कुछ धारण करता है वही धर्म है और धर्म का राष्ट्र के संगठन में अपना महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि धर्म ही मनुष्य को मानवता से जोड़ता है और मानवता मनुष्यता से | जब

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

मनुष्य के मन में ही सुखी जीवो को अधिक सुखी और दुखी जीवो को सुखी बनाने का भाव जागृत होता है, तब उसके द्वारा किये गए प्रत्येक कल्याणकारी कार्य उसका धर्म होते हैं | यही धर्म उसे राष्ट्र की भावनात्मक शक्ति राष्ट्रीयता से जोड़ता है जो राष्ट्र को सुसंगठित करता है | सुसंगठित राष्ट्र के संचालन हेतु शासन व्यवस्था की आवश्यकता होती है जिसकी अभाव में राष्ट्र में अराजकता, वैमनस्य आदि व्याप्त हो जाते हैं जिससे सब अपनी मनमानी करने लगते हैं | जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत चरितार्थ होने लगती है | अतः समस्त मानव जाति तथा राष्ट्र उन्नति के मूल उद्देश्य की पूर्ति हेतु शासन व्यवस्था की महती आवश्यकता पड़ती है, जिससे राष्ट्र का गौरव तथा उसकी स्वतंत्रता सदैव बनी रहती है | सभ्यता और संस्कृति राष्ट्र संगठन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है| किसी भी राष्ट्र की पहचान उसकी सभ्यता तथा संस्कृति ही होती है जिसके द्वारा ही वह अन्य राष्ट्रों के समक्ष अपनी पहचान बनाए रखता है| सभ्यता और संस्कृति ही मनुष्य को आध्यात्मिक तथा मनोवैज्ञानिक तथ्यों से सम्बद्ध करती है और राष्ट्रीयता की भावना को साकार करती है | इस प्रकार संस्कृति ही धार्मिक, आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक तथा विश्व बंधुत्व की भावना को प्रवाहित करने वाली नदी है जिस का उद्गम स्थान राष्ट्र है | साहित्य भी राष्ट्र संगठन को अत्यधिक प्रभावित करता है | साहित्य के द्वारा ही व्यक्ति स्वयं को समाज में समायोजित करने योग्य बनाता है | समाज में समायोजित व्यक्ति ही अपना, अपने परिवार का, नगर का, देश तथा समाज का कल्याण कर सकता है | इस प्रकार साहित्य व्यक्ति पर समाज पर, राष्ट्र पर अपना विशेष प्रभाव डालता है जिससे राष्ट्र की आंतरिक भावनात्मक शक्ति को तथा राष्ट्रीय एकता को बल मिलता है |वेदो में वर्णित समता, सहृदयता और स्नेह का यह आदर्श अधिकांशतः मानव जाति के संदर्भ में प्रतिष्ठित हुआ है | यही भावना आगे चलकर उपनिषद और गीता में विस्तृत हुई है| परम एकत्व के आदर्श के अंतर्गत समस्त प्राणियों और वनस्पतियों तक के प्रति अधिक समभाव प्रकट किया गया है| राष्ट्रीय एकता एक ऐसी भावना है जिसके अनुसार राष्ट्र के समस्त निवासी एक दूसरे के प्रति सद्भावना रखते हुए राष्ट्र की उन्नति हेतु परस्पर मिलकर कार्य करते हैं | वस्तुतः यह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जो राष्ट्र का एकीकरण करते हुए उसके निवासियों में पारस्परिक

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

बंधुत्व और राष्ट्र के प्रति निजत्व का भाव जागृत करते हुए राष्ट्र को सुसंगठित और सशक्त बनाती है 2| इस प्रकार राष्ट्रीय एकता भाषा, धर्म, जाति, संप्रदाय, संस्कृति और सभ्यता की भिन्नता होते हुए भी उन्हें एकता के सूत्र में बांधकर राष्ट्र को सुदृढ़ बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है | राष्ट्रीय एकता राष्ट्र रूपी शरीर में आत्मा के समान है जिस प्रकार आत्मा विहीन शरीर प्रयोजनहीन हो जाता है उसी प्रकार राष्ट्र भी राष्ट्रीय एकता के अभाव में टूट जाता है | ऋगवेद के दशम मण्डल का १२५वॉ " वाक्-सूक्त है । इसे आत्मसूक्त भी कहते हैं । इसमें अम्भृण ऋषि की पुत्री वाक् उसे ब्रह्मसाक्षात्कार से आत्मज्ञान प्राप्त होने के कारण सर्वात्मदृष्टि को अभिव्यक्त कर रही हैं । मैं ही राष्ट्री अर्थात् सम्पूर्ण जगत् की ईश्वरी हूँ । मैं उपासकोंको उनके अभीष्ट वसु-धन प्राप्त करानेवाली हूँ ।

जिज्ञासुओंके साक्षात् कर्तव्य परब्रह्मको अपनी आत्माके रुपमें मैंने अनुभव कर लिया है । जिनके लिये यज्ञ किये जाते हैं, उनमें मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ । सम्पूर्ण प्रपञ्चके रुपमें मैं ही अनेक-सी होकर विराजमान हूँ । सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरमें जीवनरुपमें मैं अपने-आपको ही प्रविष्ट कर रही हूँ । भिन्नभिन्न देश, काल, वस्तु और व्यक्तियोंमें जो कुछ हो रहा है, किया जा रहा है, वह सब मुझमें मेरे लिये ही किया जा रहा है । सम्पूर्ण विश्वके रुपमें अवस्थित होनेके कारण जो कोई जो कुछ भी करता है, वह सब मैं ही हूँ ।1यह वैदिकसूक्त अहं शक्ति का दर्शन कराता है।यह राष्ट्र में एक विश्वरुप आत्मभाव जगाने हेतु एवं राष्ट्र के संरक्षण में अपनी दिव्य शक्तिदेने वाले देवो में प्रमुख एकादश रुद्र, अष्टवसु,बारह आदित्य और विविधविश्वदेवताके रुपमें विचरण करती हूँ, अर्थात् मैं ही उन सभी रुपोमें भासमान हो रही हूँ । मैं ही ब्रह्मरुपसे अह्नके देव मित्र और रात्रि के देव वरुण दोनोंको धारण करती हूँ । मैं ही पक्षापक्ष के देव इन्द्र और अग्नि एवऋतु के देव अश्विनीकुमारोंका राष्ट्रभावना से धारण-पोषण करती हूँ ।2यानि काल को में धारण करती हूँ ।राष्ट्र के परोपकार हेतु मधुर सोमरस से अमीरस सींचती हू ।.ही सोमपस को में राष्ट्रभाव से धारण करती हू। मैं ही शत्रुनाशक, कामादि दोष-निवर्तक, परमाल्हाददायी, यज्ञगत सोम, चन्द्रमा, मन अथवा शिवका भरण पोषण करती हूँ । मैं ही त्वष्टा,

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

पूषा और भगको भी धारण करती हूँ । जो यजमान यज्ञमें सोमाभिषवके द्वारा देवताओंको तृप्त करनेके लिये हाथमें हविष्य लेकर हवन करता है, उसे लोक-परलोकमें सुखकारी फल देनेवाली मैं ही हूँ । मैं ही राष्ट्री अर्थात् सम्पूर्ण जगत् की ईश्वरी हूँ । मैं उपासकोंको उनके अभीष्ट वसु-धन प्राप्त करानेवाली हूँ ।3 जो कोई भोग भोगता है, वह मुझ भोक्त्रीकी शक्तिसे ही भोगता है । जो देखता है, जो श्वासोच्छ्वासरुप व्यापार करता है और जो कही हुई सुनता है, वह भी मुझसे ही है । जो इस प्रकार अन्तर्यामिरुपसे स्थित मुझे नहीं जानते, वे अज्ञानी दीन, हीन, क्षीण हो जाते हैं । मेरे प्यारे सखा ! मेरी बात सुनो-- मैं तुम्हारे लिये उस ब्रह्मात्मक वस्तुका उपदेश करती हूँ, जिसमें श्रद्धा-साधनसे राष्ट्रभावना से राष्ट्रशक्ति को कार्यान्वित कर रही हू ।यही रहस्य बताती हू । ।4 अहं स्वयंमिदं वदामि ।मैं स्वयं ही ब्रह्मात्मक वस्तुका उपदेश करती हूँ । देवताओं और मनुष्योंने भी इसीका सेवन किया है । मैं स्वयं ब्रह्मा हूँ । मैं जिसकी रक्षा करना चाहती हूँ, उसे सर्वश्रेष्ठ बना देती हूँ, मैं चाहूँ तो उसे सृष्टिकर्ता ब्रह्मा बना दूँ और उसे बृहस्पतिके समान सुमेधा बना दूँ । मैं स्वयं अपने स्वरुप ब्रह्मभिन्न आत्माका गान कर रही हूँ ।5 विश्वभाव को पोषित करते हुये यह राष्ट्रसंध को सूक्ष्मरुप से देवता एवं स्थूलस्वरुप से मनुष्य भोग रहे है।राष्ट के संरक्षण दो रुप से हो रहे है। जो व्यक्ति ऋषि की तरह राष्ट्र में क्रान्ति लाता है एवं ज्ञानविज्ञान के कार्यो को करता है उसे में सुमेधा विज्ञानी बनाती हूं।जब भी राष्टकी व्यापक विश्वभावना को अनुकरण करते हुए परोपकारार्थ कार्य होते है तभी राष्ट्र को नाश करने हेतु शत्रु उत्पन्न होते है । इस प्रकार के स्वार्थी एवं विश्वभाव के द्वेष करने वाले शत्रुओ का संहार करने हेतु मैं ही ब्रह्मज्ञानियोंके द्वेषी हिंसारत त्रिपुरवासी त्रिगुणाभिमानी अहंकारी असुरका वध करनेके लिये संहारकारी रुद्रके धनुषपर ज्या (प्रत्यञ्चा) चढाती हूँ । मैं ही अपने जिज्ञासु स्तोताओंके विरोधी शत्रुओंके साथ संग्राम करके उन्हें पराजित करती हूँ । मैं ही द्युलोक और पृथिवीमें अन्तर्यामिरुपसे प्रविष्ट हूँ । इस विश्वके शिरोभागपर विराजमान द्युलोक अथवा आदित्यरुप पिताका प्रसव मैं ही करती रहती हूँ । उस कारणमें ही तन्तुओंमें पटके समान आकाशादि सम्पूर्ण कार्य दीख रहा है । दिव्य कारण-वारिरुप समुद्र, जिसमें सम्पूर्ण प्राणियों एवं पदार्थोंका उदय-विलय होता रहता है, वह ब्रह्मचैतन्य ही मेरा निवासस्थान है । यही कारण है कि

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

मैं सम्पूर्ण भूतोंमें अनुप्रविष्ट होकर रहती हूँ और अपने कारणभूत मायात्मक स्वशरीरसे सम्पूर्ण दृश्य कार्यका स्पर्श करती हूँ ।जैसे वायु किसी दूसरेसे प्रेरित न होनेपर भी स्वयं प्रवाहित होता है, उसी प्रकार मैं ही किसी दूसरेके द्वारा प्रेरित और अधिष्ठित न होनेपर भी स्वयं ही कारणरुपसे सम्पूर्ण भूतरुप कार्योंका आरम्भ करती हूँ । मैं आकाशसे भी परे हूँ और इस पृथ्वीसे भी । अभिप्राय यह है कि मैं सम्पूर्ण विकारोंसे परे, असङ्ग, उदासीन, कूटस्थ ब्रह्मचैतन्य हूँ । अपनी महिमासे सम्पूर्ण जगत् के रुपमें मैं ही बरत रही हूँ, रह रही हूँ ।यही अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां सर्वात्मदृष्टि को अभिव्यक्त कर रही हैं ।हमारा देश भारत एक ऐसा ही देश है जहां भाषा, धर्म, जाति, संप्रदाय, संस्कृति और सभ्यता आदि कि भिन्नता पायी जाती है| लेकिन फिर भी यह एक गौरवशाली राष्ट्र है जो अहं शक्ति (सूक्त) से राष्ट्रीयभावना एवं विश्वभावना का गौरव दिखाता है|

पादटीप

1. अभिवर्धताम् पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम् [2] यजुर्वेद २८/२२

2. अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय। अथर्ववेद ६/७८/२

युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यत्।। ऋग्वेद 5।60।5

3. सर्वे भते अज्येष्ठा परेह्यभीहि धर्ष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते | ऋग्वेद १/१३/९

इन्द्र नर्म्णं हि ते शवो हनो वर्त्रं जया अपोऽर्चन्न नु स्वराज्यम् यजुर्वेद ७.२०

4. अकनिष्ठास उद्भिदो ऽमध्यमासो महसा वि वाव्रधुः | सामवेद २/२१६

सुजातासो जनुषा पर्श्निमातरो दिवो मर्या आ नो अछा जिगातन ।। ऋग्वेद १/८०/३

5. मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत्[ऋग्वेद ५/५९/६

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

6. आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्चद्वि मातरम् । क उग्राः के ह शृण्विरे ।अथर्ववेद

7. तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥ 1॥ ऋग्वेद 10 मण्डल125-सूक्तऋ2

8. अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।

अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥ 2 ॥ ऋग्वेद 10 मण्डल125-सूक्तऋ1

9. अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥ 3 ॥ ऋग्वेद 10 मण्डल125-सूक्तऋ3

10. मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणितियईं श्रृणोत्युक्तम् ।

अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥ 4॥ ऋग्वेद 10 मण्डल125-सूक्तऋ4

10. अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।

यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ 5 ॥ ऋग्वेद 10 मण्डल125-सूक्तऋ5

11. अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।

अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ 6 ॥ ऋग्वेद 10 मण्डल125-सूक्तऋ6

12. अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।

ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥ 7 ॥ ऋग्वेद 10 मण्डल125-सूक्तऋ7

13. अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।

परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव ॥ 8॥ ऋग्वेद 10 मण्डल125-सूक्तऋ8

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

सन्दर्भग्रन्थसूचि

1. ऋग्वेदसंहिता प्रकाशक- सचिव दिल्लीसंस्कृत अकादमी राष्टिय राजधानी क्षेत्रम् दिल्लीसर्वाकारः
2. यजुर्वेदसंहिता प्रकाशक- सचिव दिल्लीसंस्कृत अकादमी राष्टिय राजधानी क्षेत्रम् दिल्लीसर्वाकारः
3. अथर्वेदसंहिता प्रकाशक- सचिव दिल्लीसंस्कृत अकादमी राष्टिय राजधानी क्षेत्रम् दिल्लीसर्वाकारः
4. वैदिककोश प्रकाशक- सचिव दिल्लीसंस्कृत अकादमी राष्टिय राजधानी क्षेत्रम् दिल्लीसर्वाकारः